स्त्री सम्बन्धित परम्पराओं का वर्जन स्त्री के विद्रोहात्मक रूप से

Stree Sambandhit Paramparaon Ka Verjan Stree Ke Vidhrohatmak Roop Se

Sapna Devi

Research Scholar, Singhania, University, Rajasthan, India

Email - sapnadadwal86@yahoo.in

सरांशः नारी कई वर्षो से शोषण की शिकार रही है । सदैव पुरूष प्रधान समाज में उसके अस्तित्व को नकारा गया है । नारी को समाज में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पडा है । नारी के अस्तित्व को कभी उसके परिवार में तो कभी समाज में हमेशा नकारा गया है । महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में नारी की समस्याओं, स्त्री–पुरूष के बदलते सम्बन्धों, स्त्री की तनाव ग्रस्त मानसिकता एवं मुक्ति की कामना को बडी सूक्ष्मता के साथ अंकित किया है । नारी ने पारिवारिक संदर्भो में तो विद्रोह किया ही है साथ में सती सावित्री के नैतिक–सामाजिक बन्धनों और मान्यताओं के प्रति भी विद्रोह किया है । इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में नारी विद्रोह के ढेरो कारण और स्थितियों में स्त्री–पुरूष के तनावपूर्ण सम्बन्ध समस्या बन गये है । पत्नी के दिमाग में अब पतिव्रत धर्म जैसी कोई गलत फहमी नही है । नारी और पुरूष एक दूसरे के पूरक हैं, दोनो इस समाज के प्रत्येक कार्य में सामान्य रूप से भागीदार हैं, परन्तु जब पुरूष ने नारी को शोषित करना चाहा और अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये, उसे व्यक्ति से वस्तु समझा, तभी नारी ने उसके अत्याचारों का शोषण का सक्रिय विरोध करने के लिए आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने का प्रयत्न किया । समाज ने बलात्कार की शिकार नारी के लिए दुर्दात बंधनो की सीमा–रेखा खींची है । लेकिन आज की नारी समाज की दकियानूसी मान्यताओं की परवाह न करती हुई परम्परागत सामाजिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह करती है परन्तु वर्तमान विद्रोहिणी नारी ने दोनो मोर्चे खोल दिए हैं ।

सांकेतिक–शब्द– नारी विद्रोह, नारी दशा, सशक्त, परिवर्तन, समाज ।

----------♦----------

प्रस्तावना :

इक्कीसवीं सदी में समय व परिस्थितियों के साथ नारियों में भारी परिवर्तन परिलक्षित होने लगा है । नारी केवल परिवार में ही नही वरन प्रत्येक क्षेत्र में पुरूष के साथ कंधे से कंधा मिला कर कार्य कर रही है । आज वह पुरूष के समकक्ष ही शिक्षित है जिसमे अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूकता आने लगी है । मानव सभ्यता के इतिहास में महिला अस्मिता उसके समान अधिकार और स्वतंत्रता का प्रश्न सदैव ही तनावपूर्ण एवं असंमजस्य पूर्ण रहा है । नारियों को लेकर जितनी भी व्यवस्थाएँ बनी उसमें उसे प्रायः दोयम दर्जे का स्थान दिया गया । इसके लिए हमारी सामाजिक व्यवस्था और पुरूष प्रधान समाज की सोच पूर्णरूप से उत्तरदायी है । सामाजिक असमानता, निरक्षरता, अंधविश्वास, दहेज, जातिप्रथा, लिंगभेद आदि मुद्दों के विरूद्व आवाज उठ रही है और निरंतर उठती रही है । डॉ. मधु सन्धु लिखती है बीसवीं सदी के पूर्वार्द्व तक अपने पांव पर खडी औरत चल नही पाती थी किन्तु इक्कीसवीं सदी की पूर्व संध्या में टूट कर बिखरने की बजाय वह लडने की हिम्मत जुटा चुकी है । इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हम प्रथम दशक के उपन्यासों में देख सकते हैं । इसी प्रकार सीमोन द बोउवा लिखती हैं, ''पुरूष जान–बूझकर स्त्री को बौना रखता है । स्त्री न देवी है, न राक्षसी, वह मानवी है जिसे समाज की फूहड प्रथाओं ने दासता में जकड कर रख दिया है ।'' परन्तु आज नारी ने पुरूष द्वारा बताये गये इन रास्तों को जांचे बिना इन पर चलने से इन्कार कर दिया है । **'मृदुला गर्ग'** के **'उसके हिस्से की धूप'** में मनीषा अपने पहले पति जितेन को छोडकर मधुकर के साथ चली जाती है । वह जितेन से कहती है कि 'मै तुमसे तलाक चाहती हूं ।' मै नाराज नही हूं, ''मै मधुकर से प्यार करती हूं और उससे विवाह करना चाहती हूं ।'[1] मनीषा जितेन को छोडकर मधुकर के पास चली जाती है । क्योकि वह जितेन से

प्यार नही करती आज की नारी जिससे प्रेम नही करती उसके साथ वह रह नही सकती । यह प्रेम के रास्तें में आने वाले मातृत्व तथा पत्नीत्व जैसे मधुर रिश्तों को तोडने में भी कभी नही झिझकती । नारी हर क्षेत्र में पुरूष की समानता का दावा करती है । स्वातंत्रय–पूर्ण उपन्यासों में मिलने वाले विद्रोह की सीमाएं हैं । यहां विद्रोह उन्मुक्त यौन सबंधों तथा वैवाहिक समस्याओं तक सीमित हो कर रह गया प्रतीत होता है । बेटी का विद्रोहिणी रूप **'मैत्रेयी पुष्पा'** के **'बेतवा बहती रही'** में देख सकते हैं जहां मीरा के पिता उसकी सहेली उर्वशी से विवाह कर लेते है तथा उसे घर लेकर आते है । अपनी सहेली तथा पिता को देख मीरा गुस्से से अपनी आजी के घर चली जाती है । जब उसका भाई विजय उसे घर वापिस लेने जाता है तो वह कहता है – ''मीरा, घर चलो, मैं नही जाऊंगी, कभी नहीं'' । जब उसका भाई कहता है कि ''अभी तक पिता जी को नही पता कि तुम यहां हो, पता चलेगा तो..... तब मीरा विद्रोहिणी आवाज में कहती है कि ''पता चलेगा तो..... क्या करेंगे''[2]। ब्रेतो लिखते है कि– ''अब वह समय आ गया है कि स्त्री अपने आदर्शो को पुरूष पर आरोपित करे क्योंकि आज पुरूष अपना सर्वस्व खो चुका है । स्त्री ही पुरूष को उसका वास्वविक स्वरूप पुनः प्रदान कर सकती है । उसे अपनी सही भूमिका समझनी होगी । उसे अपने को नरक से निष्कासित करना होगा जिसमें पुरूष ने उसको कैद कर रखा है ।'' नारी पुरूष की कैद से बाहर निकलकर अपने पैरों पर खडे हो रही है । वह अपना आस्तित्व बनाने के लिए अपने परिवार, पति तक का विरोध करती है

नारी ने जब घर–परिवार तथा समाज से विद्रोह किया तो उसके विद्रोह का एक पहलू प्रशासनिक राजनैतिक भ्रष्टाचार के प्रति भी था । **विद्या विंदु सिंह** का **'नीरमती'** में जब नीरमती बलात्कार का शिकार होती है तो समाज का विद्रोह करती हुई अपना जीवन जीती है । वह समाज के डर से आत्महत्या नही करती है । वह समाज का विद्रोह करती हुई बच्चों को जन्म देती है वह कहती है ''कि माँ जी, मै अपने बच्चे को जन्म देना चाहती हूं । उसका क्या कसूर है कि जन्म लेने से ही रोक दिया जाए ।''[3] जब उसके लिए अब किसी भी अत्याचार को सहना असहनीय था । **'विद्या विंदु सिंह'** के **'नीरमती'** में मातंगी जी नीरमती को न्याय दिलाने के लिए प्रशासनिक विद्रोह करती है । वह जिलाधिकारी सुषमा जी के साथ मिलकर नीरमती को न्याय दिलवाती है । मातंगी जी को पता चलता है कि नीरमती के असली मुजरिम पर तो बडे राजनेता का बरदहस्त था । कालिंदी जी को जब पता चलता है तो वह चिंतित होती है । मातंगी जी उसके समझते हुए कहती है कि ''ऐसे तो डर'' के कारण कभी अन्याय का विरोध नही होगा । दुष्टों के हौंसले बढते जाएगें । आप चिंता न करे । ईश्वर सदैव सच का साथ देते है ।''[4] यह 21वीं शती की उस नारी की स्थिति है जो अपने आपको नारी के रूप में नही अपितु मनुष्य के रूप में पहचानती हुई सीधे–सीधे रूप में नही तो दरेरा देकर दूसरे को अपनी पहचान की सही स्थिति से अवगत कराना चाहती है । अब नारी कानूनी और आर्थिक रूप से पुरूष पर निर्भर नही है । प्रेमिकाएं भावुकता की लक्ष्मण रेखा लांघ चुकी है । उन्हे बहकाया नही जा सकता । पारिवारिक संदर्भो में विद्रोह के अनेक स्तर है । नारी यहॉ मां, बेटी, बहू, बहन, सास सभी रूपों में विद्रोहिणी तथा गुस्सैल मुद्राओं में खडी दिखाई देती है । **ममता कालिया** के **'बेधर'** में रमा की सास जब उसके पास रहने जाती है तो रमा अपनी सास का विरोध करती है । परमजीत को पता चला कि रमा के मन में उसकी मां के लिए कितना विरोध है । रमा अपनी सास का विरोध करती कहती है कि ''क्यों, पहले क्या कम दिया है जो अब और दूं । मेरी मां ने महीनों लगाकर दहेज तैयार की थी पचासों चक्कर करोल बाग के लगाये थे तुम्हारे मां ने उठाकर बेटी को थमा दिया । वह तो मैने उतारे होते तो गहनों के एक दो सैट भी दे डालती । मै कुछ नही बुनने वाली ।''[5] नारी और पुरूष एक दूसरे के पूरक हैं, दोनो इस समाज के प्रत्येक कार्य में सामान्य रूप से भागीदार हैं, परन्तु जब पुरूष ने नारी को शोषित करना चाहा और अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये, उसे व्यक्ति से वस्तु समझा, तभी नारी ने उसके अत्याचारों का शोषण का सक्रिय विरोध करने के लिए आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने का प्रयत्न किया । **उषा प्रियवंदा** के **''अन्तर्वशी''** में जब बाना की सहेली सारिका जब उसे घर से निकलकर काम करने की सलाह देती है वह उसे कहती है कि ''आगे पढना शुरू करो । अंग्रेजी सीखो, बच्चे बडे होने पर मनपसन्द नौकरी करने देंगे । इन्हे तो गर्म–गर्म दाल–भात चाहिए'' वाना का उतर सुनकर सारिका गुस्से में कहती है कि यह जिन्दगी है किसकी ? तुम्हारी न तुम्हे अपने जीवन पर उतना ही अधिकार है जितना शिवेश का ।''[6] इसी स्वावलम्बन ने उसका सर्वागीण विकास कर उसे पराधीनता तथा अत्याचारों के विरूद्व आवाज उठाने की हिम्मत दी । आज नारी पुरूष के साथ के बिना अपने आप को निस्सहाय अनुभव नही करती । उसमे इतना आत्म विश्वास है कि यदि पुरूष उसकी आशाओं पर पूरा नही उतरता तो वह उसे छोडकर अलग रहना प्रारम्भ करती है, या उसे तलाक देती है । आज की स्त्री अब न मोम की गुडिया है, न त्याग–करूणा की प्रतिमूर्ति । उनके सामने अनेक रास्ते खुले पडे है । भावुकता से सराबोर स्त्रियां अब बीते जमाने की बात है । विनोवा ने कहा था, ''यदि मैं स्त्री होता, तो न जाने कितनी बगावत करता । मैं तो चाहता हूं कि स्त्रियों की तरफ से बगावत हो ।'' उसी स्वर को सुनते हुए अब नारी में अन्य भावों ''सुख, दुख, शोक, हर्ष की तरफ ही विद्रोह भाव भी पूर्ण रूप से विकसित हो चुका है । अब वह समाज पति तथा परिवार द्वारा दी गई प्रताडना तथा की गई गुस्ताखियों को सहज रूप से स्वीकार न करते हुए मिट जाना या मिटा देना ही उचित समझती है ।

उदेश्य :–

1. वर्तमान स्त्री के विद्रोत्मक रूप का अध्यन करना ।

2. स्त्री तथा पुरूषों की तीन असमानता, निरक्षरता तथा लिंग भेद के मुद्वों को उजागर करना ।

3. 21वीं सदी की नारी का दृशांत जो स्वयं को स्त्री नही अपितु पुरूष के रूप में पहचानती है ।

दृशांत –

वर्तमान समय में समस्त दुनिया ने विश्व ग्राम का रूप ले लिया है । प्रोद्योगिकी के कारण आकाश और नक्षत्रों पर हमारी उडाने जारी हैं । ऐसे में जब हमारे विचार मान्यताएं, संस्कृति, सरकार और समाज परिवर्तनो से प्रभावित हैं, तो फिर सतत् परिवर्तनशील महिला का व्यक्तित्व कैसे अप्रभावित रह सकता है । आज वह विश्व सुन्दरी बनकर गौरवान्वित हो रही है एवं चन्द्रमा पर अपनी उपस्थिति अंकित कर रही है । अब वह केवल आंचल में दूध आंखों में पानी लेकर नही जीती है अब उसके पास अदम्य साहस है । वह इतिहास की धारा बदलने में सक्षम हो रही है । आज वह पुरूष के समकक्ष ही शिक्षित है जिसमे अपने अधिकारों के प्रति भी जागरूकता आने लगी है । इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में नारी विद्रोह के ढेरो कारण और स्थितियों में स्त्री–पुरूष के तनावपूर्ण सम्बन्ध समस्या बन गये है । पत्नी के दिमाग में अब पतिव्रत धर्म जैसी कोई गलत फहमी नही है ।

निष्कर्ष :–

प्रस्तुतशोध में आत्म सजग, आत्मनिष्ठ व आत्मनिर्भर नारी दफतरी कर्मचारीयों परिवार के सदस्यों तथा माता–पिता, पति के प्रति आर्थिक विद्रोह करती है । वह दयनीय बनकर शोषण का शिकार नही होती । अर्थ सजग नारी के सशक्त रूप के दर्शन इस दशक के उपन्यासों में होते है । नारी का इसी प्रकार का रूप इस अध्याय का विवेच्य विषय है । नारी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए नारी की विभिन्न युगों की स्थिति पर, जीवन मूल्यों की दृष्टि से संकेत है । आर्थिक क्षेत्र में विद्रोह करने के पश्चात् प्रशासनिक, राजनैतिक तथा भ्रष्टाचारी व्यवस्था से विद्रोह करती नारी भी दिखाई देती है । पुलिस के अत्याचारों, दकियानूसी, व्यवस्था, अॅधे कानून, भ्रष्ट राजनीति तथा सरकारी, अर्द्वसरकारी संस्थाओं की निरंकुशता से खुलकर विद्रोह करती है ।

संदर्भ सूची

1. मृदुला गर्ग – उसके हिस्से की धूप, पृष्ठ – 109
2. मैत्रेयी पुष्पा – बेतवा बहती रही, पृष्ठ – 122
3. विद्या विदुसिंह – नीरमती, पृष्ठ – 69
4. विद्या विदुसिंह – नीरमती, पृष्ठ – 133
5. ममता कालिया – वेघर, पृष्ठ – 150
6. उषा प्रियम्वदा – अन्तर्वशी, पृष्ठ – 222